## प्रवचन–3 वचनामृत–26 से 30

वचनामृत 26 वाँ बोल है। 25 वाँ (पूरा) हुआ। इसके पहले जो ऐसा कहा न? कि 'णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं।' पाठ तो अभी इतना है कि 'णमो अरिहंताणं' परन्तु अन्तिम पाठ ऐसा है कि 'णमो लोए सव्व साहुणं।' (ऐसा) आता है न? वह ('सव्व') सब पद को लागू पड़ता है और इसके अतिरिक्त 'धवल' (शास्त्र में) एक बात है कि, 'णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं' ऐसा पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। भूतकाल के, भविष्य के और वर्तमान अरिहंतों को नमस्कार! ऐसे 'णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं'–जो सिद्ध हुए, हो रहे हैं और होंगे, उन्हें भी अभी से नमस्कार करता हूँ। ऐसे 'णमो लोए सव्व आयरियाणं'। 'णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आयरियाणं' – वैसे आचार्य... वैसे तो आत्मा में पाँच पद भरे हुए हैं। सूक्ष्म बात है। आत्मा में पाँच पद स्वरूप भरे हैं। उन्हें यहाँ सम्यक्दृष्टि नमस्कार करते हैं कि तीन काल में वर्तते सर्व आचार्य और उपाध्याय को; और अभी कोई जीव नरक में भी हो (तो उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूँ)।

जैसे तीर्थंकर श्रेणिक राजा अभी पहली नरक में हैं। आगे होनेवाली चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। वे भी अभी नमस्कार करने त्रिकालवर्ती नमस्कार में आ जाते हैं।

आहा...हा...! तीनों काल में बिराजमान पंच परमेष्ठी–भूतकाल, वर्तमान और भविष्य – तीनों काल वर्तते सर्व पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करके वचनामृत की शुरुआत करते हैं। ऐसे यह 26 वाँ बोल आया (है)। आहा...हा...हा...!

**भीतर आत्मदेव बिराजमान है....** कठिन पड़े जगत को! (क्योंकि) अभ्यास नहीं होता। दुनिया के अभ्यास के आड़ में यह बात एक तरफ पड़ी रही! संसार में भटकने के भाव–मिथ्यात्व और शुभाशुभभाव, ये तो चार गति में भटकने के भाव हैं।

यहाँ कहते हैं कि **भीतर आत्मदेव बिराजमान है....** सब में, हों...! आहा...हा...हा...! अन्तर आत्म दिव्य शक्ति, जैसी दिव्य अर्थात् प्रधान शक्ति, पंच परमेष्ठी की होनेयोग्य है, वैसी शक्ति इस आत्मा (में) अन्तर में बिराजमान है। आहा...हा...! **उसकी सँभाल कर।** आहा...हा...हा...!

भगवान आत्मा अन्तर (में) बिराजमान है। यह देह, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी, आबरू, कीर्ति–जड़ ये तो धूल हैं–पर (हैं)। अन्दर में पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे भी पर हैं और विकार व संसार का कारण और संसार है। उनसे भिन्न आत्मा अन्दर में बिराजमान है–वह आत्मदेव है! (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! नाप कैसे कर सके? कभी करता नहीं और करने की दरकार कभी की नहीं। (इसलिए कहते हैं, अब) **उसकी सँभाल कर।** सब की सँभाल करने के लिए तू तत्पर हो रहा है परन्तु अन्तर (में) यह भगवान बिराजमान है, उसकी सँभाल कर! एक बार इसके सन्मुख तो देख! कि अन्दर कौन है? आहा...हा...!

बाह्य की व्यवस्था करने के (पीछे) निवृत्त नहीं? सारा दिन यह व्यवस्था–यह धूल की, पैसे की, स्त्री और बच्चों की व कुटुम्ब की व्यवस्था के (पीछे) अकेला पाप (करता है)। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य भी नहीं!! पुण्य तो कब होता है? कि जब चार–चार घण्टे, तीन–चार घण्टे सत्समागम करे, वांचन करे, श्रवण करे तो भले ही धर्म न हो परन्तु उसे पुण्य होता है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि इस पुण्य से भी पार भीतर में आत्मा बिराजमान है। आ...हा...हा...! **उसकी सँभाल कर।** उसकी सँभाल कर (ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...!

मैं एक आनन्दमूर्ति प्रभु हूँ! इसकी रुचि और दृष्टि अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र

नहीं की। इसकी तो सँभाल कर। **अब अन्तर में जा,...** अन्तर गहराई में–पाताल में भगवान परमात्मा बिराजमान है। आहा...हा...हा...! वर्तमान पर्याय, शुभाशुभभाव के पीछे अन्तरात्मा भगवान बिराजमान है। वहाँ जा। है? **अन्तर में जा,...** ऐसा (करने की) निवृत्ति कहाँ थी?

भक्ति, पूजा, व्रत, तप आदि सब भाव, शुभभाव हैं। वह कोई धर्म नहीं। आते हैं... धर्मी जीव को भी ऐसे भाव आते अवश्य हैं, फिर भी उसे हेय जानते हुए अन्दर चिदानन्द भगवान की वे सँभाल रखते हैं। धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जो अन्तर में बिराजमान चैतन्य भगवान है, उसकी सँभाल करते हुए अन्तर में जाते हैं। आ...हा...हा...!

(इसलिए यहाँ कहते हैं), **अन्तर में जा, और तृप्त हो।** बाहर में प्रभु तुझे कहीं तृप्ति नहीं मिलेगी। आहा...हा...! अन्दर शुभ और अशुभ के विकल्प के राग के पीछे चैतन्यदेव दिव्यशक्ति का (धारक) भगवान बिराजमान है। आहा...! जिसे परमात्मस्वरूप भी कहते हैं। वह परमात्मा–स्वभाव–शक्ति अन्दर बिराजमान है। परमात्मा स्वयं सिंह समान (है)। (ऐसा) परमात्मा का बल अन्दर भरा है। इसकी सँभाल कर, प्रभु! और तृप्त हो। वहाँ तुझे शान्ति मिलेगी, वहाँ तृप्ति होगी। यहाँ बाहर में तुझे पाँच–पचीस लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ मिले, तो तृप्ति नहीं होगी। तेरा भिखारीपना छूटेगा नहीं। भिखारी हो गया है भिखारी...! यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ।

एक बार कहा था न? (वांचन में) भावनगर दरबार आये थे। उन्हें एक वर्ष की करोड़ की आमदनी है, पैदाइश है। हमारे पास में ही है–सोनगढ़ से नजदीक (है)। व्याख्यान में आये थे, तब कहा 'दरबार! महीने में जो लाख या दो लाख माँगे, वह छोटा भिखारी है, करोड़ माँगे वह बड़ा भिखमंगा, भिखारी है।' यहाँ तो (हमको) कहाँ उनसे कुछ लेना-देना था? (वह) प्रसन्न हो जाये तो कुछ पैसे दे (जाये)! यहाँ तो कुछ है नहीं। आहा...! दरबार स्वयं सुनने आये थे। (उन्होंने कहा) 'सही बात, महाराज!' मैंने कहा – बापू! यह धूल है तेरी! इस राज्य की एक वर्ष की करोड़ की आमदनी है, वह धूल है! अन्दर में भगवान बिराजमान है, उसे न देखकर भिखारी (होकर बाहर में भीख माँगता है)। माँगण... माँगण समझे? भिखारी को माँगण कहते हैं न! जो माँगे... माँगे। भिखारी, यह

लाओ... यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... यहाँ कहते हैं कि भाई ! ऐसा भिखारीपना छोड़ दे ! और (अन्दर आत्मा में) तृप्त हो। अन्दर में तृप्ति हो, ऐसी चीज़ पड़ी है। प्रभु ! ऊपर के शरीर को तू मत देख ! स्त्री के, पुरुष के, नपुंसक के, तिर्यंच के, पशु के, सिंह–नाग (आदि) शरीर को न देख ! इसके आत्मा को अन्दर देखे तो वह चैतन्यदेव बिराजमान है। आहा...हा... !

(इसलिए कहते हैं कि) **अन्तर में जा और तृप्त हो।** वहाँ तुझे तृप्ति होगी। अन्तर में जा, वहाँ तुझे तृप्ति होगी, ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! लक्ष्मीचन्दभाई ! बाहर में–धूल में कहीं भी तृप्ति नहीं होगी। करोड़–करोड़ की महीने की आमदनी हो तो भी भिखारीपना (करे)... अधिक करूँ... अधिक करूँ और ज्यादा करूँ... भिखमंगे की तरह भिखारी (होकर घूमता है)। शास्त्र में उन्हें 'वरांका' कहा हैं। शास्त्र में वरांका अर्थात् भिखारी कहा है। सिद्धान्त में पाठ है। 'वरांका' शब्द आता है–'वरांका' ! आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! तू अन्तर में देख तो सही एकबार ! भगवान तृप्त हो। **अनंतगुणस्वरूप आत्मा को देख,...** अन्दर अनन्तगुणस्वरूप आत्मा है। आ...हा...हा... ! एक गुणरूप नहीं, रागरूप नहीं, अनन्त... अनन्त गुणस्वरूप... (है)। एकबार कहा था– आकाश के (जितने) प्रदेश हैं, इससे अनन्तगुने गुण एक जीव में हैं। जगत को जँचना मुश्किल पड़े। (क्योंकि कभी) सुना नहीं। जीव की संख्या अनन्त है। इससे इन परमाणुओं की संख्या अनन्तगुनी है। यह (अंगुली) एक चीज़ नहीं, यह तो अनन्त परमाणुओं का दल है। टुकड़े करते... करते... अन्तिम परमाणु रहे, उसे जिनेश्वरदेव परमाणु कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणुओं का यह पिण्ड है। तो आत्मा की संख्या से परमाणुओं की संख्या अनन्तगुनी है। आहा...हा... ! उससे अनन्तगुने तीन काल के समय हैं। एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाते हैं। ऐसे तीन काल के समय, परमाणुओं की संख्या से अनन्तगुने हैं। इससे अनन्तगुने आकाश के प्रदेश हैं। यह चौदह ब्रह्माण्ड है। जितने में जीव, जड़ और छह द्रव्य रहते हैं, उसे लोक कहते हैं। लोक (से) बाहर खाली भाग (है)। खाली... खाली... कहीं भी जिसका अन्त नहीं, ऐसा दसों दिशा में आकाश (रहा है)। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आकाश। इसमें एक परमाणु को रखे

और वह जितने भाग को (रोके उसे) प्रदेश कहते (हैं)। इस आकाश के जो प्रदेश हैं, उससे अनन्तगुने गुण एक जीव में हैं। आहा...हा...हा...! है?

**अनन्तगुणस्वरूप आत्मा को देख,...** आ...हा...हा...! परन्तु निवृत्ति कहाँ है? फुर्सत कहाँ है? आहा...! लिपट गया है–पुण्य और पाप में लिपट गया है। अन्दर भिन्न भगवान है, इसकी एक बार सँभाल कर! **उसकी सँभाल कर। वीतरागी आनन्द से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर,...** आ...हा...हा...! क्या कहा यह?

अन्दर वीतरागी आनन्द पड़ा है। अनादि–अनन्त वीतरागी आनन्द की मूर्ति ही प्रभु है। उसकी वर्तमान दशा में सब गड़बड़ है। पुण्य और पाप, संसार, नरक और निगोद (की गड़बड़ है)। वस्तु है, वह तो वीतरागी आनन्द से भरा हुआ स्वभाव है। आहा...! उसमें क्रीड़ा कर–उसमें केलि कर, उसमें जाकर मौज कर। अन्यत्र कहीं भी मौज है नहीं। आ...हा...हा...हा...!

देखो! ये बहिन अनुभव से बोले हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में से (बोले हैं)। बालब्रह्मचारी 64 लड़कियाँ हैं। बड़े लाखोंपति की लड़कियाँ हैं। कुछ एक ग्रेज्युएट हुई हैं। उनमें बहिन यह बोले थे, (वह) लिख लिया तो यह प्रकाशित हो गया। आहा...! लेकिन बोले हैं अन्तर के अनुभव के नाद से!! नाद अन्तर में आया, जो लड़कियों ने सुना है, उसे लिख लिया।

**वीतरागी आनन्द से भरपूर...** क्या कहा? वीतरागी आनन्द से भरपूर स्वभाव है। राग और पुण्य–पाप से भरा स्वभाव नहीं है। पुण्य और पाप तो कृत्रिम नये भाव विकार–ज़हर उत्पन्न करता है। पुण्य और पाप के भाव तो ज़हर है। पहले आ गया है। (बोल-19) शुभभाव है, वह काला नाग है, ज़हर है। पहले आ गया था। आहा...हा...! कैसे जँचे यह बात? आत्मा अन्दर में कौन है? इसकी कुछ खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं, **वीतरागी आनन्द से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर,...** सार है, सार–केवल यह तो!! **उस आनन्दरूप सरोवर में...** अन्दर आनन्दरूप सरोवर है, प्रभु! वहाँ नज़र कर और वहाँ **केलि कर–उसमें रमण कर।** इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहा...! धर्म की पहली सीढ़ी इसका नाम है। बातें करने से कोई वड़ा

(पकौड़ी) हो ऐसा नहीं है! (हम लोग) वैसे भी नहीं कहते कि, 'बाते वड़ा थाय नहीं! यह वड़ा (पकौड़ी बनाने) का सामान चाहिए–आटा, घी–तेल या ऐसी कोई चीज़ (चाहिए)– यूँ ही बातों से वड़ा नहीं बनता। यह तो भाषा से कुछ नहीं मिलता।

अन्तर में भगवान आत्मा में उतरकर उसमें क्रीड़ा कर, वहाँ रमण कर। वहाँ तुझे आनन्द होगा और तेरे दुःखों का अन्त आ जायेगा। आ...हा...हा...! यह 26 (वाँ पूरा हुआ)। 27 वाँ बोल तुम्हें पढ़ लेना है।

**भविष्य का चित्रण कैसा करना है, वह तेरे हाथ की बात है। इसलिए कहा है कि–'बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत!' ॥28॥**

28 वाँ बोल। क्या कहते हैं अब? **भविष्य का चित्रण कैसा करना है, वह तेरे हाथ की बात है।** आज के बाद भविष्य का चित्रण करना–नरक का, तिर्यंच का, मनुष्य का, देव का या सिद्ध का–इन पाँच प्रकार का चित्रण करना, यह वर्तमान तेरे हाथ में है (ऐसा कहते हैं)। पूर्व के जो कर्म हैं, वे तो समाप्त हो गये। अब कहते हैं कि नये कर्म बाँधना हो तो शुभाशुभभाव (कर) और यदि मोक्ष चाहिए हो तो सिद्ध भाव (प्रगट कर)। यहाँ भविष्य के चित्रण में तो पाँचों गति आ जाती हैं।

वर्तमान में नरक के परिणाम करेगा तो नरक मिलेगा, तिर्यंच के भाव करेगा तो पशु होगा, मनुष्य के भाव करेगा तो मनुष्य होगा, देव के भाव करेगा तो देव होगा, सिद्ध के भाव करेगा तो सिद्ध होगा। इन पाँचों गति का चित्रण करना तेरे हाथ में है। तू जैसा चित्रण करेगा, वैसा होगा। आ...हा...हा...! कहो, झवेरचन्दभाई!

**वह तेरे हाथ की बात है। इसलिए कहा है कि–'बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत!'** 'सलुणा...! बंध समय जीव चेतो रे।' बंध के समय ही चेत जा। पुण्य-पाप के भाव का बन्ध हो, उस समय ही चेत जा। 'बंध समय जीव चेतो रे'– यह एक स्तुति है–देवचन्दजी का स्तवन है। देवचन्दजी (नाम से) एक (साधु) श्वेताम्बर में हो गये। यह स्तवन इनकी कृति है। 'बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत! सलुणा!' यह उदय

आवे, तब तू क्या करेगा? वह उदय तो आयेगा ही और इसका फल तुझे भुगतना ही पड़ेगा। उस समय चिन्ता करेगा तो कुछ काम नहीं आयेगा।

**उदय समय क्या चिंत!** (अर्थात्) कर्म के उदय में तू चिन्तवना करे कि अरे...! यह टल जाये (तो अच्छा)! मुझे न मिले, वह काम नहीं आयेगा। उस समय तेरी चिन्ता काम नहीं कर सकेगी। आहा...हा...हा...! यह 28 (पूरा हुआ)।

**ज्ञान को धीर–गम्भीर करके सूक्ष्मता से भीतर देख तो आत्मा पकड़ में आ सकता है। एक बार विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं॥29॥**

29 (बोल)। **ज्ञान को धीर–गम्भीर करके...** आहा...हा...! यह ज्ञान जो है– जानने की दशा है, उसे धीर करके (अर्थात्) यह ज्ञान की दशा जो पुण्य–पाप की ओर झुककर ढल गयी है, वे संसार (में) भटकने के लक्षण हैं। आहा...हा...! ज्ञान को धीर-गम्भीर करके (अर्थात्) अन्तर जानपने में सूक्ष्मता लाकर, अन्तर में ढल सके, ऐसी भावना करके... आहा...! **भीतर देख...** अरे...! अरे...! ऐसी भाषा है!!

ज्ञान को–जानपने को धीर (करके), जो पर की ओर झुक रहा है, उसे धीर करके और जिसकी वह पर्याय है, उसे तू देख। उस पर्याय के पीछे पाताल–चैतन्य पाताल भगवान बिराजमान है। आहा...हा...! यहाँ तो कुछ पाँच–पचीस लाख जहाँ मिले, वहाँ तो प्रसन्न–प्रसन्न हो जाता है। (कहेगा) 'लापसी का अदहन करो आज।' 25 लाख की आमदनी हुई है। 25 लाख (मिले हैं)। जेठालालभाई! पिछले साल तो एक करोड़ की आमदनी हुई है! करो लापसी का अदहन! लापसी चढ़ाईये (बनाने का प्रबंध करो)!! सब ज़हर सुलगा है वहाँ!! आहा...!

यहाँ कहते हैं कि उसके अन्दर जा। **आत्मा पकड़ में आ सकता है।** आ...हा...हा...हा...! ज्ञान को धीर व सूक्ष्म करके, बाहर में भटक रहे ज्ञान को, ज्ञान की

वर्तमान दशा, बाहर में भटक रहे ज्ञान को अन्दर में लाने के लिए धीर कर प्रभु! सूक्ष्म कर! धीर–गम्भीर हो!

**ज्ञान को धीर–गम्भीर करके सूक्ष्मता से भीतर देख...** 'सूक्ष्मता' से अन्दर देख! स्थूल (उपयोग में) अन्दर देखना नहीं होगा। स्थूल (उपयोग से) तो राग, द्वेष और ये अनादि से भटक रहा है, वह संसार दिखेगा। आहा...हा...! शब्द थोड़े हैं (परन्तु) भाव बहुत गहरे भरे हैं।

अनुभव में से–आनन्द के वेदन में से आयी हुई वाणी है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करते हैं। ज्ञानी अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करते हैं। उस वेदन में से वाणी (का) जो विकल्प आता है, वह राग है। आ...हा...हा...! परन्तु उसमें यह आया है।

ज्ञान को धीर करके... आहा..हा...! सूक्ष्म करके भीतर देख.... **तो आत्मा पकड़ में आ सकता है।** अन्दर भगवान आत्मा पकड़ में (आये ऐसा है) अर्थात् अनुभव हो सके, ऐसा है। आहा...हा...! **एक बार विकल्प का जाल तोड़कर...** राग और पुण्य–पाप के ज़हर की जो जाल (है), उसे एक बार तोड़कर (अर्थात्) इसकी महिमा और कीमत तोड़कर, अन्दर में चैतन्य की महिमा में जा! तुझे अन्दर भगवान मिलेगा!! आहा...हा...! ऐसी बात है। **वचनामृत, मक्खन है!**

**भीतर देख तो आत्मा पकड़ में आ सकता है।** आहा...! जिस स्थिति में–सूक्ष्म उपयोग (से) पकड़ में आये, वैसे भीतर में देख तो पकड़ में आ सकता है। पुण्य और पाप के विकल्प से वह पकड़ में नहीं आ सकेगा। आ...हा...हा...हा...! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के परिणाम से यह पकड़ में आये, वैसा प्रभु नहीं है। 'सँड़सा से सर्प पकड़ा जाता है।' छोटे–छोटे मोती पकड़ने में सँड़सा काम नहीं आता। मोती पकड़ने (के लिये) सुनार की पतली सँड़सी (सवाणी) होती है या हाथ होता है। बहिनें–बेटियाँ ये तोरण बनाते हैं न? तोरण... तोरण...! सर्प पकड़ने का सँड़सा से मोती पकड़ने में आता है? सुनार की बारीक सँड़सी (सवाणी) होती है या हाथ हो, (उससे) धीरे से लगाते हैं। मोती के बनाते हैं न? क्या कहते हैं उसे? तोरण... तोरण...! तुम्हारे नाम भी भूल जाते हैं। तोरण बनाते हैं, तब उसमें धीरे से मोती लगाते हैं। वह हाथ से पकड़कर लगाते हैं, लकड़े से पकड़कर नहीं।

वैसे भगवान को पकड़ना हो तो पुण्य–पाप (के भाव) से पकड़ में नहीं आयेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

यहाँ तो संसार का अभाव (करने) की बातें हैं, प्रभु! जिससे जन्म-मरण न मिटे, उस बात में कोई दम नहीं है। वह तो मरकर नरक और निगोद (में जायेगा)। करोड़पति–अरबोंपति मरकर पशु होंगे। हाथी, घोड़ा और सूअर होगा, और सूअर वहाँ विष्टा खाते हुए मरकर फिर नरक में जायेगा!! सूअर बहुत विष्टा खाता है। आहा...! ऐसे भव तूने अनन्त बार किये, प्रभु! (अब) एक बार अन्दर में देख! आत्मा पकड़ में आये वैसा है।

**एक बार विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा,...** आ...हा...हा...! ऐसी बातें हैं। सूक्ष्म में सूक्ष्म अन्दर राग का विकल्प–जो भाव है, उसे भी छोड़कर, उस विकल्प के पीछे भगवान चिदानन्द बिराजमान है। अन्दर में पाताल में, इसके तल में प्रभु बिराजमान है। ऊपर–ऊपर राग दिखता है, अन्दर में भगवान है, वहाँ जा! वहाँ जा, उनकी सँभाल कर और विकल्प का जाल तोड़, अन्दर से अलग हो जा। **फिर जाल चिपकेगा नहीं।** आ...हा...हा...हा...!

मकड़ी होती है न मकड़ी? उसको आठ पैर होते हैं और उन आठ पैरों से उसे ऐसी लार निकलती है कि उस लार में वह फँस जाती है। करोळिओ...! (हिन्दी में) क्या कहते हैं? मकड़ी। ये दो पैरवाले मनुष्य को मनुष्य कहते हैं; परन्तु स्त्री से शादी करके चार पैरवाला हुआ तो पशु हुआ! कहो, जेठालालभाई! चार हुए न? चार पैर। और इसमें लड़का हुआ तो छह पैर हुए, भँवरे को छह पैर होते हैं। फिर भँवरे की तरह भूँ–भूँ करता रहता है–यह मेरा बेटा है और यह मेरा वह है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा व्यवसाय है और यह मेरी नौकरी चलती है और यह मेरी (मुझे) पचास हज़ार की नौकरी मिल रही है और सालभर की आमदनी एक लाख की है। (वैसे) भँवरे की तरह भूँ–भूँ करता रहता है। और फिर उस बेटे की शादी करे, तब आठ पैर होते हैं। मकड़ी को आठ पैर होते हैं। देखा है कभी? भँवरे को छह पैर होते हैं, मकड़ी को आठ होते हैं और आठ पैर (वाला) हुआ तो लार निकालकर उसमें ही उसमें बैठ जाता है! लार निकालकर उसी में फँस जाता है। 'मकड़ी' कहते हैं न तुम्हारे क्या कहते हैं (हिन्दी में)? 'मकड़ी'!

ऐसा यहाँ कहते हैं कि पर में इस प्रकार जा रहे हो, इसके बदले उसे छोड़कर अन्दर (आत्मा) में जा न! आहा...हा...! जहाँ सिद्धपद प्राप्त हो, ऐसी अन्दर दशा है। **एक बार विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं।** जो चना सिक गया, वह फिर से उगेगा नहीं। जो चना दाळिया हुआ... 'दाळिया' कहते हैं न? भूने हुए चने को 'दाळिया' कहते हैं न? क्या कहते हैं तुम्हारे? (दाळिया... दाळिया) वह भूना हुआ चना फिर उगेगा नहीं। वैसे एकबार अन्तर में आत्मज्ञान हुआ और राग को जला दिया, वह अब फिर से उगेगा नहीं। (अर्थात्) उसको अवतार हो सकता नहीं। एक–दो अवतार हो तो भी उसे ज्ञेयरूप जानते हैं और अपने आनन्द में रहकर उसे ज्ञेयरूप जानकर छोड़ देते हैं। आ...हा...हा...! वह जाल फिर चिपकेगा नहीं। आहा...हा...! वे भूने हुए चने फिर से नहीं उगेंगे। वैसे एक बार अज्ञान को जला दिया और यदि आत्मज्ञान किया, वह (अज्ञान) फिर से उगेगा नहीं। उसे भवभ्रमण नहीं होगा, उसका चौरासी में भटकना नहीं होगा। (यदि अज्ञान को नहीं जलाया) तो मरकर चौरासी में भटकने जायेगा। आहा...हा...हा...!

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती! 96 करोड़ सैनिक, 72 हजार नगर, 48 हज़ार पाटन, 96 करोड़ गाँव, 96 करोड़ सैनिक के बीच मौज़ कर रहे, हीरा का...! क्या कहते हैं तुम्हारे? पलंग। पलंग, भूल जाते हैं! ये हीरे के पलंग! उसमें सोता था। उसमें उसे इतनी ममता थी कि यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... रानी को याद करके, रानी को...! एक रानी थी, जिसकी (एक) हज़ार देव सेवा करते थे, ऐसी 64 हज़ार (रानियाँ) होती (हैं) परन्तु एक रानी ऐसी होती (है)। उस रानी को याद करते–करते देह छूटकर सातवीं नरक में चला गया!! अभी सातवीं नरक में है। 33 सागर की (आयुष्य की) स्थिति में है। अभी तो 85 हज़ार साल बीते। इससे असंख्य अरब वर्ष अभी तो वहाँ रहना होगा। आहा...हा...! ऐसे अवतार अनन्त बार किये हैं। प्रभु! तूने भी अनन्त बार ऐसा किया है।

(अब) एक बार (अन्दर आत्मा को) देख और (विकल्प के) जाल को तोड़ तो वह जाल चिपकेगा नहीं। फिर जाल चिपकेगा नहीं। भूने हुए चने उगेंगे नहीं। आहा...! यह 29 वाँ (पूरा) हुआ।

**जब बीज बोते हैं तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, उसमें से डालें–पत्ते–फलादि आयेंगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता; उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है; द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखायी नहीं देता, इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है॥30॥**

३० (वाँ बोल)। **जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता,...** क्या कहते हैं? बीज... बीज बोये, तब प्रगटरूप से अभी कुछ नहीं दिखता। **तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा',...** बीज बोया उसमें से वृक्ष होगा। **उसमें से डालें–पत्ते–फलादि आयेंगे;...**–उसमें से इसके फल भी आयेंगे। गेहूँ का दाना बोया होगा तो गेहूँ का फल भी आयेगा। एक गेहूँ से अनेक गेहूँ होंगे। एक दाना बोया इसके बहुत होंगे – ऐसा इसे उसका विश्वास है। आहा...! एक बाजरे का दाना बोया (तो इसे) विश्वास है कि इसमें से भुट्टा लगेगा, उसमें सैकड़ों बाजरे के दाने पकेंगे। ऐसा इसे उसमें विश्वास है। आ...हा...हा...! इस बीज में से वृक्ष फलेगा, उसमें से फलादि आयेंगे। **पश्चात् उसको विचार नहीं आता,...** आहा...हा...! फिर उसे विश्वास आ गया और फल आने के बाद ये विचार नहीं आते।

**उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक....** आहा...हा...हा...! बीज की तरह, द्रव्यस्वरूप भगवान को एक बार पकड़ने से, उसका विश्वास आने पर कि इसमें से मुझे सिद्धपद मिलेगा, इसमें से मुझे केवलज्ञान होगा, इसमें से अब मुझे अनन्त आनन्द (मिलेगा), ऐसा समकितरूपी बीज यदि बोया... आहा...हा...! उस बीज में इतनी ताकत है कि जैसे एक बीज में से हज़ारों दाने पकते हैं, वैसे इस समकितरूपी बीज में से केवलज्ञान की फसल होगी। आहा...हा...! भाईचन्दभाई! ऐसी बातें हैं ये! किस प्रकार का उपदेश है यह? यह करो और यह करो और यह करो और यह करो–ऐसा उपदेश तो (अन्यत्र) चलता ही है। (और) अनादि से वैसा करता ही रहा है। परन्तु कुछ करना नहीं

है; अन्दर में जम जाना है—इस चीज़ को उसने सुना भी नहीं। रुचिपूर्वक सुना नहीं।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि, **मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...** (अर्थात्) भगवान आत्मा को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान द्वारा पकड़ने से—अनुभव करने से, **विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...** ऐसा कहा है न? अकेले द्रव्य को नहीं परन्तु द्रव्य का विश्वास करके। सम्यग्दर्शन, ज्ञान का विकास करके। आहा...हा...! है? **द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है;...** बीज बोने से जैसे फल होता है, वैसे भगवान पूर्णानन्द के नाथ को बीजरूप पकड़ने से; जैसे बाहर में चन्द्र में दूज (उगे) तो पूर्णिमा हुए बिना रहती नहीं, वैसे चैतन्यमूर्ति भगवान (आत्मा) राग से रहित (है), (ऐसा) एक बार अन्दर बीज बोया तो उस बीज में से केवलज्ञान हुए बिना रहता नहीं। ऐसा (किये) बिना अन्य कोई रास्ता अपनायेगा तो वह तो चारगति में भटकने का रास्ता है। आहा...हा...!

नरक, निगोद और एकेन्द्रिय... आहा...हा...! मूली...! मूली समझें? यह कांदा। उसमें पड़ा था, (तब) मुफ्त में बिका है। पहले चार पैसे का सेर (मिलता) था। अभी तो मँहगा हो गया है। चार पैसे की सेर लौकी है! एक या दो सेर लौकी ली हो, लड़का (साथ में) हो (और) लड़का कहे, 'बापू! मुझे मूली दिला दो!' तो (सब्जीवाला) एक मूली मुफ्त में दे देता है। मूली...! उस (मूली में) यह मुफ्त में बैठा था! (इस प्रकार) मुफ्त में बिका है। आहा...हा...! जिसकी कीमत भी नहीं दी लोगों ने। बैगन या लौकी के सेर के चार पैसे दिये हो। अभी तो यहाँ महँगा है और आपके यहाँ (नैरोबी) में तो काफ़ी महँगा है। यहाँ की बात सुनी है कि यहाँ तो बहुत महँगा (है)! ओ...हो...हो...हो...! वहाँ सेब छह पैसा—छह आना का मिलता है,यहाँ कहते हैं कि सेब पाँच से छह रुपया का मिलता (है)! हें। 'सफ़रजन'... एपल... एपल... सेब। वहाँ हमारे सेब छह आने—आठ आने में इतना बड़ा मिलता है। यहाँ इतना सेब लेने जाए तो पाँच रुपये—छह रुपये चाहिए उसके। इतनी तो कीमत बढ़ गयी। आहा...हा...! ये सब बाहर की कीमत बढ़ा ली है। जैसे इस देश में इसकी कीमत बढ़ी है, वैसी काठियावाड़ में (इसकी) कीमत बढ़ी नहीं। इस तरह आत्मा ने अपनी कीमत छोड़कर पर की कीमत बढ़ा ली है। शरीर की, वाणी की, पैसा की, पुण्य की, पाप की—यह कीमत बढ़ाकर आत्मा की कीमत छोड़ दी है। आ...हा...हा...हा...!

यहाँ यह कहते हैं, **मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...** विश्वासपूर्वक अर्थात् सम्यग्दर्शनपूर्वक। अकेला पकड़ नहीं सकता – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

यह तो बहिन–बेटियों के बीच बोलने में आ गया, वह यह लिखकर बाहर आया है। अनुभव की वाणी है।

(हम) जब छोटी उम्र के थे, करीब 10-12 साल की उम्र (होगी)। तब हमारे पड़ोसी एक ब्राह्मण थे। वे ब्राह्मण जब नहाते... बाद में धोती पहनते हैं न, क्या कहते हैं उसे? 'अबोटियुं'! तब अबोटियुं पहनते-पहनते बोलते थे–'अनुभवीने एटलुं आनंदमां रहेवुं रे... भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे...' आठ वर्ष की–दस वर्ष की उम्र में यह सुना था! मुझे लगा, यह क्या बोलते हैं मामा? क्योंकि हमारे माता भुंबली (गाँव के) थे, इसलिए हम ब्राह्मण को 'मामा' कहते थे। (मैंने कहा) 'मामा! आप ये क्या बोलते हो?' 'अनुभवीने एटलुं...' तो कहा 'मुझे कुछ ज्यादा पता नहीं–अनुभवी अर्थात्...? मैं तो भाषा बोलता हूँ।' 'अनुभवीने एटलुं रे आनन्दमां रहेवुं रे।' यह भगवान आत्मा आनन्द (स्वरूप) है, इसका ज्ञान करके आनन्द में रहना। आहा...हा...! 'भजवा परिब्रह्म...' परि अर्थात् सर्वथा प्रकार से महा आनन्द का नाथ, सागर आत्मा! 'भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं...' यह वाणी ब्राह्मण में है। ब्राह्मण नहाते समय ऐसा बोलते हैं। सब सुना है... बहुत सुना है! छोटी उम्र से–आठ-नौ वर्ष की उम्र से...! अभी तो नब्बे और इक्यानवे हुए! आ...हा...हा...! धूल में भी कुछ नहीं इसमें बाहर में। अन्दर में बिराजमान है। 'अनुभवीने एटलुं आनंदमां रहेवुं रे...' ऐसा कहते हैं तब, लो! उसको कुछ पता नहीं था! भाषा ऐसी आती थी।

वैसे यहाँ कहते हैं कि अनुभवी को (अर्थात्) विश्वासपूर्वक–आत्मा का विश्वास करके–सम्यग्दर्शन प्रगट करके, मिथ्यात्व को टालकर, राग को जलाकर, **विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है;...** उसे आनन्द की निर्मल दशा प्रगट होती है। आहा...हा...हा...!

यह आतमराम है। रामजीभाई! यह आतमराम की बात है। आहा...हा...! 'निजपद

रमे सो राम कहिये...' जो आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसमें रमे, उसे (राम कहिये)। निजपद (में) रमे, उसे आत्मा कहिये। राग में रमे उसे 'हरामी' कहिये!! आ...हा...हा...! कठिन बातें, बापू! कहते हैं कि पुण्य और पाप के भाव में रमे, वह हरामी है, क्योंकि वे अनात्मा हैं–वे पुण्य-पाप के भाव, आत्मा नहीं है। आत्मा तो पुण्य–पाप से रहित अन्दर चैतन्यमूर्ति आनन्द है। उसको ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। आ...हा...हा...!

जैसे बीज बोने से फल आते हैं; वैसे आत्मा का स्वभाव अनन्त गुण से भरा भण्डार (है), इसका एक बार भी अनुभव करने से उसको अनन्त फल पकते हैं और सिद्ध की पर्याय प्रगट होती है।

**द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखायी नहीं देता...** बीज बोते समय फल, फूल कुछ नहीं दिखता। क्या कहा? बीज बोते समय फल, फूल नहीं दिखते। वैसे पहले अन्दर आत्मा की ओर देखने से पहले कुछ नहीं दिखता। परन्तु बाद में उस बीज का विश्वास करे कि 'यह बीज है, इसलिए फलेगा ही।' आहा...! वैसे **द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखायी नहीं देता; इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है....** उसको विश्वास तो आता नहीं। अनादि से बाहर में विश्वास करके भटक रहा है। आहा...हा...!

**इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है,...** उसको पहले ऐसा लगता है। यह बीज बोता हूँ, वह अभी तो दिखता नहीं, परन्तु फल आये बिना रहेगा नहीं। वैसे एक बार आत्मा को प्रगट करने से, भले ही अस्तित्वरूप से पहले भासित हो, बाद में इसका विश्वास आये, इसके पहले विश्वास नहीं आता। परन्तु विश्वास आता है कि निश्चितरूप से इसमें से प्रगट होगा।

**परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है।** वस्तु का विश्वास करने से (निर्मलता प्रगट होती है)। भाई! सूक्ष्म बात है, बापू! आहा...हा...! यह बाहर की होली जल रही है, इसमें यह बात जँचना...! आहा...हा...! एक बार नहीं कहा था? गोवा में एक शान्तिलाल खुशाल थे। 'पाणसणा' के दशाश्रीमाली बनिये थे, उसके पास दो अरब चालीस करोड़ रुपये थे। दो अरब और चालीस करोड़। अभी उसके लड़के गोवा में हैं। वे भाई मरने पर..., उनकी पत्नी को हेमरेज हुआ था, इसलिए 'मुम्बई'

दवा कराने आये परन्तु यह तो उनकी पत्नी तो हेमरेज में ही बेहोश थी। उसमें दो-चार दिन वह रात्रि को उठा डेढ़ बजे। गोवा में जिसके साठ लाख के तो मकान है। चालीस लाख का एक बंगला और दस-दस लाख के दो, ऐसे तीन और लाख-लाख का एक छोटा जहाज, ऐसे तीन सौ-तीन सौ। उसका मेंगनीज का धन्धा था। (उसका) लोहे का धन्धा था। मेंगेनीज जो शब्द होता है वह। एक गाँव से दूसरे गाँव ले जाने के लिये तीन सौ जहाज थे। एक जहाज एक लाख का, ऐसे तीन सौ। मरते समय, ....अरे! मुझे दुःख होता है, मुझे अन्दर कहीं चैन नहीं पड़ता, बस ऐसा कहते हुए देह छूट गयी। गया भटकने चार गति में। तेरे धूल के दो अरब और चालीस करोड़ रुपये, ढाई अरब रुपये धूल में हैं। यह बड़ी मूल्यवान चीज़ तो यहाँ पड़ी है!! इसका तो तुझे विश्वास नहीं है कि यदि मैं आत्मा की प्रतीति कर लूँ तो केवलज्ञान हुए बिना रहेगा ही नहीं, यदि (मैं) आत्मा का अनुभव कर लूँ और आत्मा के बराबर विश्वास से पकड़ लूँ तो सिद्धपद (प्रगट) हुए बिना रहेगा नहीं, ऐसा विश्वास नहीं करता। (बाहर की चीज़ का) विश्वास करता है। आहा...!

(इसलिए कहते हैं कि) **द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है।** बीज बोने से, बीज की श्रद्धा करने से फल अवश्य फलेगा ही—ऐसा विश्वास है। वैसे यह चैतन्य भगवान, पुण्य और पाप के राग से भिन्न (है)—इसकी श्रद्धा करने से, विश्वास करने से, इसमें से केवलज्ञान और परमात्म(पद) होगा ही, ऐसा उसे विश्वास हुए बिना नहीं रहता। लेकिन पकड़े तो विश्वास होवे न? पकड़े बिना विश्वास किसका करना? जो वस्तु दिखी नहीं, जो वस्तु ज्ञान में जानने में आयी नहीं, इसका विश्वास किस प्रकार आये?

यह तो अन्दर ज्ञान में ज्ञात हो, ज्ञान की पर्याय सूक्ष्म करने पर, उस ज्ञान में—'यह चीज़ आनन्दमयी और शुद्ध है' ऐसा ज्ञात हो। विश्वास तो उसको आता है, और उसका विश्वास, वह समकितदर्शन कहा जाता है और इस समकितदर्शन में से केवलज्ञान प्रगट हुए बिना रहता नहीं। आ...हा...हा...! दुकान में व्यापार के फल में इसे विश्वास (है) कि, हम दस लाख का कपड़ा रखते हैं तो इसमें प्रतिवर्ष दो लाख की आमदनी तो होगी ही। उसका इसे विश्वास (है)!! जेठालालभाई!

**मुमुक्षु**—आपकी वाणी से हमें ऐसा लगता है कि यह सब छोड़ दे किन्तु छोड़ा नहीं

जाता, इसका क्या करना? हमको ऐसा लगता है कि हमारे पूर्व भव के कर्म भी बहुत होंगे इसलिए ये पकड़ नहीं सकते।

**पूज्य गुरुदेवश्री**—यह कुछ नहीं, यह छोड़ देना। इसका फल छोड़ देना। पूर्व कर्म का लक्ष्य छोड़ देना! अभी 'मैं महान आत्मा हूँ।' इसका लक्ष्य करना, बस! पूर्व के कर्म थे, यह (बात) मेरे पास है नहीं। 'मैं तो एक आत्मा हूँ। आत्मा को कर्म का स्पर्श है नहीं। आत्मा कर्मों का स्पर्श नहीं करता।' आ...हा...हा...!

'समयसार' की तीसरी गाथा में प्रभु ने ऐसा कहा है, 'समयसार!' सबेरे अपन वाँचते है न? उसमें ऐसी बात है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुंबता नहीं। आत्मा, परमाणु का स्पर्श नहीं करता। कर्म को आत्मा छूता नहीं। कर्म, जीव का स्पर्श नहीं करते। प्रत्येक द्रव्य अपने जो गुण और पर्याय हैं, उन्हें ही वह स्पर्श करता है, उन्हें ही वह चुंबता है। 'समयसार' है न? (उसमें) तीसरी गाथा में है, तीसरी गाथा...! प्रत्येक तत्त्व अपने गुण और पर्याय को स्पर्शता है। पर को (कभी) छूया ही नहीं और छूता भी नहीं। (मात्र) मान्यता कर रखी है कि मैं इसका स्पर्श करता हूँ और (मैं) इसको ऐसा करता हूँ। आहा...हा...!

**मुमुक्षु**—यह तो निश्चय की बात है, व्यवहार से छूता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री**—व्यवहार से छूता है—बिल्कुल नहीं, झूठी बात है। व्यवहार से स्पर्शता है—ऐसा कहते हैं, वह कथन ही झूठा है। कठिन बात है भगवान! एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता नहीं। वह छूता है, ऐसी अज्ञानी की कल्पना व्यर्थ (की) है। क्योंकि एक तत्त्व है, वह दूसरे तत्त्व के अभावस्वरूप है। यह अँगुली है, वह इस अँगुली के अभावस्वरूप है। इसका उसमें अभाव है। उसका इसमें अभाव है। जब अभाव है तो यह, इसको स्पर्श करे—ऐसा बन नहीं सकता। यदि दूसरे का स्पर्श करे, तो इसका इसमें भाव हो जाए। इसका इसमें अभाव है। वैसे एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अभाव है। इसीलिए एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को तीन काल में छूता नहीं। आहा...हा...! 'समयसार' की तीसरी गाथा है। परमात्मा की वाणी है।

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने दिव्यध्वनि में यह फरमाया है कि प्रभु! हमने ज्ञान में देखा है, आहा...हा...! 'प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल,...' 'प्रभु तुम

जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल, निज सत्ताए शुद्ध अमने पेखता हो लाल' प्रभु! आप तीन काल तीन लोक को देखते हो, उसमें हमारी इस सत्ता को आप शुद्ध देखते हो! यह आत्मा शुद्ध–पवित्र है, ऐसा आप देखते हो!! अन्दर पुण्य–पाप है, वह आत्मा है, ऐसा आप देखते ही नहीं। आ...हा...हा...! 'प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल,...' सीमन्धरस्वामी परमात्मा भगवान बिराजते हैं। महाविदेह में वर्तमान बिराजते हैं। 500 धनुष की काया है। करोड़ पूर्व की आयु है। आहा...हा...! समझ में आया? वे प्रभु ऐसा कहते थे। आहा...हा...! यह वाणी 'भर्तु' की है। प्रभु तुम जाणग रीति–प्रभु! तेरे ज्ञान की रीत में हमारे आत्मा को,... आप, हमारी सत्ता तो शुद्ध है, पवित्र है, सिद्ध समान है, ऐसे देखते हो, आहा...हा...! रागादि को पुण्य–पाप में डाल देते हो। वह आत्मा है–ऐसा आप नहीं कहते (और) नहीं देखते। हमारे आत्मा को आप ऐसा देखते हो। आ...हा...हा...! अतः भगवान जैसे देखते हैं, वैसे यदि (अपने) आत्मा (को) देखे तो सम्यग्दर्शन हो जाये। आ...हा...हा...! यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू! आहा...!

'आनन्दघनजी' कहते हैं–कृष्ण किसको कहे? 'कर्म कृशे वह कृष्ण' (अर्थात्) कर्म को, राग–द्वेष को कृश कर दे अर्थात् कि खेल करके नष्ट कर दे, उसे कृष्ण कहते हैं। राम किसको कहना? 'निजपद रमे सो राम कहिये' (अर्थात्) अपने आनन्द में रमे, उसे राम कहते हैं; बाकी राग और पुण्य में रमे, उसे हराम कहते हैं। आहा...हा...!

यहाँ तो बाहर में फूला-फला दिखता हो! बड़े मकान पाँच-पाँच करोड़ के और दस-दस करोड़ के! देखा है न हमने तो सब! क्या कहलाता है वह? मैसूर। मैसूर में साढ़े तीन करोड़ का एक मकान है। साढ़े तीन करोड़ का...! एक राजा का था, (वह) सरकार ने ले लिया, इसलिए खाली पड़ा था, तो देखने गये थे। साढ़े तीन करोड़ का एक मकान! राजा था परन्तु सरकार ने खाली करवा (दिया)। तेरा अधिकार अब नहीं, अब छोड़ दे! रैयत को दे दें! (फिर) छोड़ दिया। साढ़े तीन करोड़ का...! (राजा को ऐसा लगा कि) हाय...! हाय...! मेरी बनायी हुई चीज़ ऐसे चली गयी! वह बेचारा रोता था...! वैसे अनादिकाल से परवस्तु मेरी है–ऐसा माना है, इसलिए वह जहाँ थोड़ी ढीली पड़े या कुछ फेरफार हो वहाँ रोने रोने लगता है... रोने...! आ...हा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) **द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखायी नहीं देता, इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा'...** विश्वास आना चाहिए। अनन्त परमात्मा हो गये हैं। अनन्त आत्माओं में से अनन्तवें भाग में अनन्त परमात्मा हो गये हैं। तू भी परमात्मा होने के योग्य है न प्रभु! इतना विश्वास तो कर! और विश्वास लाकर राग का और पुण्य-पाप का विश्वास छोड़ दे कि, वह कोई चीज़ मेरी नहीं और मेरे में नहीं।

(विशेष कहेंगे...) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)